ब्रह्मसूत्र : एक दार्शनिक परिचय

विवेक कुमार*

महर्षि व्यास प्रणीत ब्रह्मसूत्र परब्रह्म परमेश्वर स्वरूप निरूपण में अति उत्तम माना गया है। इसके प्रत्येक शब्दों में गहन गम्भीर अर्थ छिपा हुआ है। यद्यपि परब्रह्म परमेश्वर का यथार्थ लक्षण जानने के लिए ही ब्रह्मसूत्र की रचना की गयी है तथापि उसको देखने वालों के दृष्टिकोण अलग–अलग होने के कारण उसकी व्याख्याएँ विविध हो गयी है।

यह ग्रन्थ वेदों के अन्तिम सिद्धान्त का निदर्शन करता है, अतः इसे ''वेदान्त दर्शन'' भी कहते हैं। वेदान्त दर्शन भारतीय अध्यात्मशास्त्र का मुकुटमणि माना जाता है। भारतीय दार्शनिक प्रवृत्तियों तथा तार्किक मान्यताओं का पूर्ण उत्कर्ष वेदान्त में प्राप्त होता है। वेदान्त का मूल उपनिषद है। ब्रह्मसूत्र उपनिषदों के विचारों में सामंजस्य लाने के उद्देश्य से लिखा गया था। विद्वानों का मानना था कि उपनिषद की शिक्षाओं में संगति नहीं है, जिस बात की शिक्षा एक उपनिषद में दी गई है, उसी बात को दूसरे उपनिषद में काटा गया है। कुछ विद्वानों का मत था कि उपनिषदों में ''एकवाद'' की शिक्षा दी गई है तो कुछ का मत था कि इसमें द्वैतवाद की शिक्षा दी गई है। बादरायण ने कुछ लोगों के दृष्टिकोण में जो विरोध था उसी को दूर करने के लिए ब्रह्मसूत्र की रचना की। उपनिषद् की शिक्षाओं में जो विभिन्नता दीख पड़ती है वह उपनिषदों को न समझने के कारण ही है। ब्रह्मसूत्र में मुख्य रूप से ब्रह्मस्वरूप का वर्णन प्रस्तुत किया गया है।

ब्रह्मसूत्र चार अध्यायों का एक सारगर्भित ग्रन्थ है। इसके प्रत्येक अध्याय को चार पादों में विभक्त किया गया है। इस तरह से ब्रह्मसूत्र में कुछ 16 पाद है। प्रत्येक पाद में जो सूत्र है वे किसी न किसी वर्ग के अन्तर्गत आते हैं, जिन्हें अधिकरण की संज्ञा दी गई है। जिनमें ये पाँच अवयव होते हैं–विषय, संशय, संगति, पूर्वपक्ष तथा सिद्धान्त उन्हें अधिकरण कहते हैं। कोई इन्हें पञ्चावयव भी मानते हैं[1]। भिन्न–भिन्न टीकाकारों में पाठ भेद भी कही–कही पाया जाता है। पहले अध्याय का नाम समन्वयाध्याय है, जिसमें बताया गया है कि सभी वेदान्तवाक्यों का एकमात्र प्रतिपादन प्रत्यगभिन्न ब्रह्म है। इस अध्याय के प्रथम पाद में स्पष्ट ब्रह्मवाचक श्रुतियों का विचार किया गया है। इस ग्रन्थ में श्रुतियों में वर्णित ''आनन्दमय''[2], ''विज्ञानमय''[3], ''सूर्यमण्डलान्तवर्ती हिरण्यमय पुरुष''[4], ''आकाश''[5], ''प्राण''[6], ''ज्योति''[7], ''गायत्री''[8], नाम से ब्रह्म का ही उपदेश हुआ है। द्वितीय पाद में उपास्य ब्रह्म और तृतीय पाद में ज्ञेय विषयक ब्रह्म विचार है तथा चतुर्थ पाद में

***शोध छात्र, दर्शन एवं धर्म विभाग काशी हिन्दू विश्व विद्यालय**

संदिग्ध, अजा, अव्यक्त आदि शब्दार्थ विषयक विचार है। दूसरे अध्याय का नाम अविरोधाध्याय है जिसमें सभी प्रकार के विरोधों का निराकरण किया गया है। इस अध्याय के प्रथम पाद में स्मृति, तर्कादि विरोधों का परिहार किया गया है, द्वितीय पाद में विरूद्ध मतों में दोषारोपण कर उनका खण्डन किया गया है। तृतीय पाद में एकमात्र ब्रह्म से ही आकाशादि विधित तत्वों की उत्पत्ति कही गई है, जो जीव विषयक श्रुतियों के विरोध का परिहार किया गया है। चतुर्थपाद में इन्द्रियादि विषयक श्रुतियों का विरोध परिहार किया गया है। फलतः इस अध्याय में सांख्य, न्याय, वैशेषिक आदि दर्शनों का खण्डन कर युक्ति और प्रमाणों से वेदान्त सिद्धान्त का अविरोध किया गया है। तीसरे अध्याय का नाम साधनाध्याय है, इसमें तत् और त्वम् पदार्थ शोधन विचारक जीव और ब्रह्म के स्वरूप का निर्देशकर ब्रह्मसाक्षात्कार के बाहरी अंग यज्ञादि और शम, दम, निदिध्यासन आदि साधनों का विचार किया गया है। चौथे अध्याय का नाम फलाध्याय है। इस अध्याय में जीवन्मुक्ति, विदेहमुक्ति, जीव की उत्क्रान्ति, पितृयान, देवयान मार्ग, सगुण व निर्गुण ब्रह्म की उपासना तथा फलों के तारतम्य पर भी विचार किया गया है।

बादरायण वेद को नित्य मानते हैं[9] वे शास्त्र प्रमाण को महत्वपूर्ण मानते हैं।[10] बादरायण के अनुसार आध्यात्म ज्ञान–सम्बन्धी सत्य की प्राप्ति तर्क द्वारा सम्भव नहीं है।[11] बादरायण ज्ञान के दो साधन स्वीकार करते हैं श्रुति और स्मृति जिसे वे प्रत्यक्ष और अनुमान कहते हैं।[12] स्मृति को ज्ञान के आधार की आवश्यकता होती है, जबकि श्रुति को नहीं, क्योंकि वह स्वतः प्रमाण है। श्रुति का तात्पर्य यहाँ उपनिषद से व स्मृति का तात्पर्य भगवद्गीता, महाभारत तथा मनुस्मृति से लेते हैं। जिस प्रकार अनुमान ज्ञान का आधार प्रत्यक्ष ज्ञान है उसी प्रकार स्मृति का आधार श्रुति है। ऐसा एक भी तर्क जो वेद के अनुकूल नहीं है। बादरायण की दृष्टि में निरर्थक है, क्योंकि शास्त्र ही हमारे मार्गदर्शक हैं, हमारे लिए वही प्रमाण है।[13]

बादरायण अपने ब्रह्मसूत्र में बताते हैं कि सांख्य में उल्लेखित प्रकृति और पुरुष स्वतन्त्र पदार्थ नहीं है बल्कि एक ही सर्वोच्च सत्ता के परिवर्तित रूप है। सर्वोच्च सत्ता एक मात्र ब्रह्म है, जिसका वर्णन उपनिषदों में किया गया। समन्वयाध्याय में उपनिषद वाक्यों का समन्वय दिखलाई पड़ता है, जैसे ब्रह्म ही इस जगत का उद्भव, स्थान तथा अन्त है[14] जो विश्व का उपादान व निमित्त कारण है। वह बिना किसी साधन सृष्टि की रचना करता है[15]। ब्रह्म की यथार्थता का प्रमाण सुषुप्ति अवस्था की साक्षी में मिलता है।[16] छान्दोग्योपनिषद में कहा है–सौम्य! जिस अवस्था में यह पुरुष (जीवात्मा) सोता है, उस समय यह सत् अपने कारण से सम्पन्न (संयुक्त) होता है ''स्व'' अपने में विलीन होता है; इसलिए इसे स्वपिति कहते हैं[17]।

ब्रह्मसूत्र में ब्रह्म ब्रह्माण्ड सम्बन्धी रूपों का प्रतिपादन किया गया। वह विश्वात्मा ज्योति है। सूर्य में जो स्वर्णमय पुरुष है वह वही है आकाश भी वही है तथा प्राण भी वही है[18]। ब्रह्मसूत्र में बादरायण कहते हैं कि आत्मा ज्ञाता है, जिसे

शंकर ने बुद्धि का रूप दिया है, परन्तु रामानुज उसे बुद्धि सम्पन्न ज्ञाता मानते हैं बल्लभ, शंकर के मत से सहमत हैं। जीवात्मा कर्ता है। श्रुतियों में बार–बार कहा गया है कि अमुक काम करना चाहिए, अमुक नहीं करना चाहिए। अमुक शुभ कर्म करने वाले का अमुक श्रेष्ठ मिलता है अमुक पाप कर्म करने वाले को अमुक दुःख भोगना पड़ता है; इसीलिए जीवात्मा को ही समस्त कर्मो का कर्ता मानना उचित है। श्रुति स्पष्ट शब्दों में जीवात्मा को कर्ता बतलाती है।[19] जन्म–मृत्यु का सम्बन्ध शरीर से है आत्मा से नहीं क्योंकि वह अनादि है नित्य है।[20] छान्दोग्योपनिषद् में सजीव वृक्ष' के दृष्टान्तसे श्वेतकेतु को समझाते हुए उसके पिता से कहा–''जीव से रहित हुआ शरीर ही मरता है, जीवात्मा नहीं मरता।[21] जीवात्मा को सूक्ष्म कहा गया है। रामानुज, मध्व, निम्बार्क, बल्लभ और श्रीकण्ठ जीवात्मा को सूक्ष्म कहा गया है। रामानुज, मध्व, निम्बार्क, बल्लभ और श्रीकण्ठ यही मत स्वीकार करते हैं, जबकि आचार्य शंकर आत्मा को सर्वव्यापक विभु मानते हैं। बादरायण का मत है कि ब्रह्म सबके हृदय में रहता हुआ भी उनके गुण–दोषों से सर्वथा असंग है। यही जीवों की अपेक्षा उसमें विशेषता है।[22] जीवात्मा तो अज्ञान के कारण कर्ता और भोक्ता है किन्तु परमात्मा सर्वथा निराकार है। वह केवल मात्र साक्षी है भोक्ता नहीं।[23] ब्रह्म इस प्रकार जीवात्मा के दोषों से सम्बद्ध; नहीं होता जिस प्रकार प्रकाश आदि अपने अंश के दोषों से लिप्त नहीं होते।[24] श्रुति में कहा–''जिस प्रकार समस्त लोकों के चक्षुः रूप सूर्यदेव चक्षु में होने वाले दोषों से लिप्त नहीं होता वैसे ही समस्त प्राणियों के अन्तरात्मा अद्वितीय परमेश्वर (ब्रह्म) लोकों के दुःखों से लिप्त नहीं होता।[25] इसलिए जब जीव दुःख भोगता है तो ब्रह्म दुःख का भागी नहीं होता। शरीरधारी आत्मा कर्म करते हुए पुण्य व पाप का संचय करती है तथा सुख व दुःख की भागी होती है, किन्तु सर्वोपरि आत्मा पाप व पुण्य से परे है।[26]

बादरायण ब्रह्मसूत्र में बताते हैं कि परमात्मा के प्राप्ति के साधनों में सबसे पहले वैराग्य की आवश्यकता है। संसार के अनित्य भोगों में वैराग्य मनष्य में उस परब्रह्म को प्राप्त करने की शुभेक्षा प्राप्त होती है और वह इसके लिए प्रयत्नशील होता है, साथ ही इसमें जीव की स्वप्नावस्था एवं सुषुप्ति अवस्था का वर्णन करके परब्रह्म के स्वरूप के विषय में निर्णय किया गया है कि वह निर्गुण–सगुण दोनों लक्षणों से युक्त है।

इस प्रकार बादरायण यह बताते हैं कि यह दृष्टिमान जगत् ईश्वर के संकल्प का परिणाम है। यह उसी की लीला है। मनुष्य जाति में जो भी विभिन्नता पाई जाती है उसका निर्णय मनुष्यों के अपने कर्म के आधार पर होता है।

सन्दर्भ :

1. विषय : सन्देहः संगतिः पूर्वपक्षः सिद्धान्त, इत्यैकैकम्धिकरणम् पञ्चावयं ज्ञेयम्।
2. आनन्दमयोऽभ्यासात् ।। ब्र0सू0 1/1/2

3. अन्तस्तद्धर्मोपदेशात् ।। ब्र0सू0 1/1/20
4. भेदव्यपदेशाच्चान्यः ।। ब्र0सू0 1/1/21
5. आकाशस्तल्लिङ्गात् ।। ब्र0सू0 1/1/22
6. अत एव प्राणः ।। ब्र0सू0 1/1/23
7. ज्योतिश्चरणाभिधानात् ।। ब्र0सू0 1/1/24
8. छन्दोऽभिधानान्नेति चेन्न तथा चेतोऽर्पणनिगदात्तथा हि दर्शनम् ।। ब्र0सू01/1/25
9. अत एव च नित्यत्वम् ।। ब्र0सू0 1/3/39
10. शास्त्रयोनित्वात् ।। ब्र0सू0 1/1/3
11. तर्काप्रष्ठानादपि अन्यथानुमेयमिति चेदेवमप्यनिर्मोक्षप्रसंगः ।। ब्र0सू0 2/1/11
12. प्रभवात्प्रत्यक्षानुमानाभ्याम् ।। ब्र0सू0 1/3/28
    प्रत्यक्षानुमानाभ्याम् ।। ब्र0सू0 3/2/24
    दर्शयतश्चैवं प्रत्यक्षानुमाने ।। ब्र0सू0 4/4/20
13. शास्त्रयोनित्वात् ।। ब्र0सू0 1/1/3
    श्रुतेस्तुशब्दमूलत्वात् ।। ब्र0सू0 2/1/27
14. जन्माद्यस्य यतः ।। ब्र0सू0 1/1/2
15. अश्मादिवच्च तटनुपपत्ति ।। ब्र0सू0 2/1/23
    उपसंहारदर्शनान्नेति चेन्न क्षीरवद्धि ।। ब्र0सू0 2/1/24
    देवादिवदपि लोके ।। ब्र0सू0 2/1/25
    कष्त्स्नप्रसक्तिर्निरवयवत्वशब्दकोपो वा ।। ब्र0सू0 2/1/26
    श्रुतेस्तु शब्दमूलत्वात् ।। ब्र0सू0 2/1/27
16. स्वाप्ययात।। ब्र0सू0 1/1/9
17. यत्रैतत् पुरुषः स्वपिति नाम सता सोम्य तदा सम्पन्नो भवति
    स्वमपीतो भवति तस्मादेनँ् स्वपितित्याचक्षते।। (छा0उ0 6/8/1)
18. अन्तस्तद्धर्मोपदेशात् ।। ब्र0सू0 1/1/20
    भदेव्यपदेशाच्चान्यः ।। ब्र0सू0 1/1/21
    आकाशस्तल्लिङ्गात ।। ब्र0सू0 1/1/22
    अत एव प्राणः ।। ब्र0सू0 1/1/23
    ज्योतिश्चरणाभिधानात् ।। ब्र0सू0 1/1/24
19. एष हि द्रष्टाश्रोता घ्राता रसयिता मन्ता बोल्दा कर्ता विज्ञानात्मा पुरुषः । (प्र0उ0 4/9)
20. ज्ञाऽत एव।। ब्र0सू0 2/3/18
21. जीवापेतं वाव किलेदं म्रियते न जीवो म्रियते। (छ0उ0 6/11/3)
22. सम्भोगप्राप्तिरिति चेन्न वैशेष्यात् ।। ब्र0सू0 1/2/8
23. तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्तयनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति। (मु0उ0 3/1/1)
24. प्रकाशादिवन्नैवं परः।। ब्र0सू0 (2/3/46)
25. सूर्यो यथा सर्वलोकस्य चक्षुर्न लिप्यते चाक्षषैर्बाह्यदोषैः।
    एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा न लिप्यते लोकदुःखेन बाह्यः।। (क0उ0 2/2/11)
26. अधिकं तु भेदनिर्देशात्।। ब्र0सू0 2/1/22